Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.249
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2411IV04V12P0008

e-ISSN No. 2394-8426
Special Issue on Scientific Research
Issue–III(IV), Volume–XII

18वीं शताब्दी में रूहेलखण्ड की सामाजिक एवं आर्थिक दशा

*संदीप गंगवार, **प्रोफेसर (डॉ0) राधेश्याम सरोज
Email : sandeepgangwar25891@gamil.com
Contact No. : 8979006699
*शोध छात्र, आर0आर0पी0जी0 कॉलेज अमेठी
सम्बद्ध
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
**प्रोफेसर, इतिहास विभाग, आर0आर0पी0जी0 कॉलेज अमेठी

सारांश

18वीं शताब्दी के बाद रूहेलों के अधीन रूहेलखण्ड के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे का व्यापक विकास हुआ। रूहेलों ने इस क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित करने के उपरांत यहाँ के कृषि, व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा दिया। उन्होंने किसानों को जमीदारों के उत्पीड़न और अत्याचार से बचाया। रूहेलों के प्रयासों से क्षेत्र की आय तो बढ़ी ही साथ ही साथ सामाजिक स्तर पर भी किसानों और ग्रामीणों की दशा में सुधार हुआ। इस समय रूहेलखण्ड में अनेक व्यापारिक केन्द्र विकसित हुए जहाँ से नेपाल, तिब्बत, कश्मीर, दिल्ली, आगरा और अवध के क्षेत्रों में व्यापार होता था। निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुओं में अनाज तथा वन उपज थी। रूहेलखण्ड के अन्तर्गत ग्रामीण सामाजिक संरचना में जमींदार, मुकद्दम, साधारण किसान तथा भूमिहीन सेवा करने वाली जातियां सम्मिलित थीं। किसानों के कई वर्ग थे।

बीज शब्द :– दोआब, तराई, खुदकाश्त, पाही, नेगी, इजारेदार, मुकद्दम, चुपरबंद, आसामी आदि।

प्रस्तावना

18वीं शताब्दी आते–आते रूहेलखण्ड में रूहेलों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। इस राज्य के निर्माण में आर्थिक कारकों के साथ–साथ राजनैतिक कारकों का भी उतना ही योगदान था। रूहेलखण्ड प्राकृतिक संसाधनों के दृष्टिकोण से अत्यंत सम्पन्न प्रदेश था। इन्हीं संसाधनों की वजह से रूहेलखण्ड एक स्वायत्त राजनैतिक इकाई बन सका। यहाँ के रूहेला शासकों ने ग्रामीण पृष्ठभूमि के ऊपर नगरीकरण को बढ़ावा दिया। धीरे–धीरे यहाँ व्यापारिक नगरों एवं कस्बों का जन्म हुआ। रूहेलों ने शान्ति व्यवस्था की स्थापना की, आवागमन के मार्गों का विकास किया तथा वणिक वर्ग को सुरक्षा प्रदान की। रूहेलों ने अपने क्षेत्र के किसानों और कृषि को भी प्रोत्साहित किया। रूहेला शासकों के प्रयासों से 18वीं शताब्दी आते–आते यह क्षेत्र अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध बन गया।

18वीं शताब्दी के मध्य रूहेलखण्ड में कृषि की दशा

साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा 18वीं शताब्दी में स्थापित रूहेला राज्य को लूटमार द्वारा स्थापित राज्य घोषित किया गया परन्तु तथ्यों के आलोक में उपरोक्त कथन निराधार प्रतीत होता है। वस्तुतः रूहेलों द्वारा स्थापित राज्य में समकालिक किसी भी अन्य राज्य की तरह ही पर्याप्त सुव्यवस्थित शासन प्रणाली विद्यमान थी। यहाँ कृषि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। यहाँ की मिट्टी उपजाऊ थी तथा सिंचाई की सुविधा की पर्याप्त उपलब्धता थी। इसलिए जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा कृषि पर निर्भर था। रूहेलखण्ड का क्षेत्र गंगा और यमुना नदियों के दोआब प्रदेश के ऊपरी भाग में स्थित था। अतः प्रतिवर्ष बाढ़ द्वारा यहाँ के खेतों पर उपजाऊ मिट्टी को बिखेर दिया जाता था। इन कारणों से दिल्ली के आस–पास का रूहेलखण्ड क्षेत्र अनाजों के उत्पादन में अग्रणी हो गया।

रूहेलखण्ड की भूमि की संरचना को कृषि भूमि, बंजर भूमि तथा वन योग्य भूमि में बाँटा जा सकता है। वस्तुतः इसके उत्तरी पहाड़ी इलाकों में भूमि वनों की अधिकता थी। औपनिवेशक कालीन बरेली सेटलमेण्ट रिपोर्ट में बताया गया है कि रूहेलखण्ड की भूमि कृषि के दृष्टिकोण से उपयुक्त है तथा बरेली, रामपुर, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद और बदायूँ में एक विशाल आबादी कृषि कार्य में संलग्न है। हालांकि उपजाऊ भूमि के साथ–साथ इस क्षेत्र में बंजर और अनुपजाऊ क्षेत्र भी विद्यमान था। उत्तरी क्षेत्र के वनों और पहाड़ी इलाकों का विस्तार बिजनौर, पीलीभीत, रामपुर और बरेली क्षेत्र में था। यह क्षेत्र एक प्रकार का निर्जन एवं बीहड़ था। यहाँ भगोड़े, विद्रोही तथा आपराधिक प्रवृत्ति के लोग शरण लेते थे। उत्तरी इलाकों में खेती करना सम्भव नहीं था फिर भी यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से उपयोगी था। यहाँ से विभिन्न प्रकार के कीमती वनोपज तथा इमारती लकड़ियां प्राप्त होती थी। रूहेलखण्ड की उपर्युक्त भौगोलिक संरचना का वर्णन सैय्यद अल्ताफ अली बरेलवी ने भी अपनी रचना 'हमात–ए–हाफिज रहमतखान' में किया है। बताया गया है कि यह क्षेत्र हिमालय के तराई से लेकर गंगा और रामगंगा नदियों की कमान क्षेत्र तक फैला हुआ था।

आधुनिक भौगोलिक मानदण्डों के आधार पर रूहेलखण्ड को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह चार भाग क्रमशः भाबर, तराई, खादर और बांगर है। भाबर सबसे उत्तरी इलाके को कहते हैं जो कंकरीला और पथरीला था। यहाँ अनेक छोटी–छोटी नदियां जैसे बहगुल, गोमती, गर्रा आदि प्रवाहित होती हैं। रामगंगा और गंगा यहाँ की प्रमुख नदियाँ हैं। रूहेलखण्ड में भाबर वाला क्षेत्र मुख्यतः बिजनौर का नजीबाबाद एवं अफजलगढ़, मुरादाबाद का ठाकुरद्वारा तथा पीलीभीत का माधोटांडा का क्षेत्र था। यहाँ के नगरों व कस्बों की एक विशेषता यह थी कि वे व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे तथा वनोपज वाले क्षेत्रों से जुड़े हुए थे। इसलिए उनका बहुत अधिक आर्थिक महत्व था। भाबर के दक्षिण में तराई की एक पट्टी प्राप्त होती थी, यहाँ पर भाबर क्षेत्र में जमीन के अन्दर समा जाने वाली छोटी–छोटी नदियां पुनः प्रकट हो जाती हैं। इसलिए यह क्षेत्र अक्सर जलाक्रान्त रहता था। तराई क्षेत्र की जलवायु अत्यंत कष्टदायी थी। यहाँ उमस भरी वर्षा तथा घनी खास युक्त घना क्षेत्र पाया जाता था।

फिर भी यह क्षेत्र पशुओं के लिए उपयोगी तथा चरागाहों से युक्त था। जो व्यापारी ऊपरी हिमालय क्षेत्र के कुमायूँ और गढ़वाल जैसी जगहों से आते थे वे इन्हीं चरागाहों का उपयोग अपने पशुओं के लिए करते थे। गर्मियों में जब मध्यवर्ती इलाकों में घास की कमी हो जाती थी तो बंजारे इन्हीं मार्गों का प्रयोग करते थे।

मध्यकाल के अन्त तक वस्तुओं तथा अनाजों का दूरवर्ती व्यापार बंजारो द्वारा ही होता था। ये बंजारे रूहेलखण्ड से मिलने वाले सामानों जैसे अनाज, चीनी, घी आदि को लेकर कुमायूँ, गढ़वाल तथा तिब्बत तक व्यापार करने के लिए जाते थे। रूहेलखण्ड के तराई का यह क्षेत्र भोटिया जनजाति के लिए बहुत उपयोगी था। इस जनजाति का मुख्य निवास स्थान तिब्बत था। ये तिब्बत के इलाकों से ही शहद, मक्खन, ऊन एवं मांस लाकर रूहेलखण्ड के मैदानी इलाकों में बेंचते थे तथा उसके बदले यहाँ से अपने लिए अनाज प्राप्त करते थे। तराई का क्षेत्र घोड़ों के व्यापारियों के लिए भी बहुत उपयोगी था। उत्तर पश्चिम से आने वाले घोड़ों के व्यापारी अपने घोड़ों को हष्ट–पुष्ट बनाने के लिए इन्हीं खास के मैदानों में रूकते थे। इसके बाद अपने घोड़ों को मैदानी इलाकों के बाजारों में ले जाते थे। रूहेलखण्ड में तराई के नीचे बांगर एवं खादर भूमि की पट्टी मिलती थी। बांगर पुराने जलोढ़ के मैदान थे जहाँ बाढ़ का पानी नहीं पहुँचता था। यह खादर की अपेक्षा कम उपजाऊ था। खादर नवीन जलोढ़ द्वारा निर्मित मैदान था। यहाँ प्रतिवर्ष वर्षा का जल पहुँचता था। यह सबसे अधिक उपजाऊ क्षेत्र था। हालांकि बांगर की भी उत्पादकता संतोषजनक थी। रूहेलखण्ड में स्थित गंगा तथा रामगंगा का दोआब कृषि हेतु सर्वाधिक उपयोगी था। इन नदियों के किनारे पाई जाने वाली बलुई या भूड़ प्रकार की मिट्टी भी जायद की फसलों के लिए बहुत उपयोगी थी। इसमें मूंग, खरबूज, तरबूज तथा विभिन्न प्रकार की शाक–सब्जियों का उत्पादन होता था। रूहेलखण्ड में बरेली, मुरादाबाद, रामपुर, शाहजहाँपुर और बदायूँ क्षेत्र की मिट्टी की उत्पादकता सबसे अधिक थी। यहाँ रबी और खरीफ दोनों प्रकार की फसलों का उत्पादन होता था। रूहेलखण्ड की सिंचाई के लिए रामगंगा और गंगा नदियों का बहुत योगदान था। इन नदियों के साथ–साथ इस क्षेत्र में बहने वाली इनकी अनेक सहायक नदियों से भी सिंचाई की सुविधा प्राप्त होती थी। हालांकि भारत के अन्य हिस्सों की तरह रूहेलखण्ड की कृषि भी वर्षा पर आश्रित थी।

यूरोपीय यात्री विलियम फ्रैंकलिन ने रूहेलखण्ड के विषय में लिखा है कि यहाँ की पैदावार अवध से बेहतर है, यहाँ गन्ना और तम्बाकू जैसी व्यापारिक फसलों के साथ–साथ चावल और गेंहूँ जैसे खाद्यान फसलों के उत्पादन वाले क्षेत्र भी उपलब्ध हैं। साथ ही यहाँ आर्थिक एवं व्यापारिक महत्व वाले वनोपज भी प्राप्य हैं। रूहेलखण्ड के संदर्भ में ऐसी ही उत्पादकता का वर्णन रेगिनॉल्ड हैबा ने भी किया है। उनके अनुसार यहाँ खाद्यानों के साथ–साथ फलों का भी उत्पादन होता था। 1819 ई0 में एक अन्य यूरोपीय यात्री डेने ने रूहेलखण्ड की यात्रा की। उनके अनुसार नदियों द्वारा सिंचित इस दोआब क्षेत्र में कृषि की उन्नत स्थिति थी। साथ ही यहाँ की अर्थव्यवस्था में जंगल भी पर्याप्त योगदान दे रहे थे।

'आइन–ए–अकबरी' में दिल्ली और आगरा के आस–पास उगाई जाने वाला रबी और खरीफ फसलों का वर्णन प्राप्त होता है। इनमें प्रमुख खाद्यान फसलों जैसे गेहूँ, चावल, जौ, बाजरा, ज्वार आदि का उत्पादन रूहेलखण्ड के सभी क्षेत्रों में हो रहा था। 18वीं शताब्दी में रूहेलखण्ड में उत्पादित होने वाली प्रमुख व्यापारिक फसलें गन्ना, तम्बाकू और कपास थीं। इन व्यापारिक फसलों के साथ ही यहाँ की अर्थव्यवस्था में अनाज मंडियां भी बहुत प्रसिद्ध थीं। मुरादाबाद में स्थित चंदौसी एक बड़ी अनाज मंडी थी। यहाँ से अनाज को दिल्ली तथा शहदरा की ओर भेजा जाता था।

कृषि की अनुकूल स्थिति के लिए यहाँ की सिर्फ भौगोलिक दशाएं ही जिम्मेदार नहीं थी वरन् यहाँ की सामाजिक दशाएं भी उतनी ही जिम्मेदार थीं। 18वीं शताब्दी में यहाँ के किसान जमींदारों के संरक्षण में कृषि कार्य कर रहे थे। संरक्षक किसानों को कृषि आगतों को उपलब्ध कराते थे साथ ही साथ अनेक व्यक्तिगत जरूरतों को भी पूरा करते थे। रूहेला प्रशासन की स्थापना के बाद जमींदार और रैय्यतों के मध्य के सम्बन्ध और मजबूत हो गये। 1774 ई0 में जब अवध के नवाब और अंग्रेजी सेना द्वारा रूहेले पराजित होकर गंगा के पार खदेड़ दिये गये तो अनेक कृषक परिवार भी उसी तरफ पलायन कर गये। विलियम फोस्टर ने लिखा है कि रूहेलों ने अपने कृषकों की आवश्यकताओं को पूर्ण किया तथा अपने अधीन क्षेत्र में कृषि के विकास हेतु व्यक्तिगत प्रयत्न किया है।

18वीं शताब्दी में रूहेलखण्ड की सामाजिक स्थिति

रूहेलखण्ड के कृषक समुदाय में मुख्यतः कुर्मी जाति के लोग उल्लेखनीय हैं। इन लोगों को कृषि की अच्छी जानकारी थी। इनके साथ इनकी औरतें भी कृषि कार्य में हाथ बटातीं थीं। कुर्मी समुदाय के लोगों को उनके निवास स्थान के आधार पर अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता था जैसे – गंगापारी, कनौजिया तथा पर्वीया आदि। इसके साथ ही यहाँ मौर्या जाति के लोग भी कृषि कार्य में संलग्न थे। मौर्या लोग अधिकतर व्यावसायिक फसले उगाते थे। इन लोगों के पास रूहेलखण्ड की सबसे अच्छी उपजाऊ भूमि थी। इस पर ये लोग गन्ना और नील की फसलें उगाते थे। इसी समुदाय की शाखा काछी और माली समुदाय के लोग थे। ये लोग बागवानी और शाक–सब्जियों की पैदावार करते थे। साधारण किसानों के साथ–साथ यहाँ कृषि मजदूरों की भी बड़ी आबादी निवास करती थी। जब खेतों पर इनका काम समाप्त हो जाता था तब ये लोग घरों में नौकर के रूप में काम करते थे। कोरी नामक एक ऐसा ही समुदाय था। ये लोग परंपरागत हस्तशिल्प द्वारा भी अपनी जीविका चलाते थे।

स्थानीय आधार पर खेतों को नियंत्रित करने वाले समुदायों में भी अंतर था। उदाहरणस्वरूप बिजनौर में चौहान, बनिया, जाट, तागा और शेख के पास सबसे अच्छी भूमि थी। बरेली और बदायूँ में कुर्मी, अहीर और मौर्य के पास सबसे अच्छी और बड़ी जमीनें थीं। समाज में भृत्य जातियों के लोगों की बड़ी आबादी रहती थी। इनके पास कृषि के लिए जमीनें नहीं थीं। ये लोगों की सेवा का कार्य करते थे। इनमें नाई, धोबी, मोची, जुलाहा आदि थे।

अपने सेवा के बदले कृषि से ही एक छोटा सा अंश प्राप्त करते थे। हिन्दू जाति व्यवस्था के अतंर्गत सामाजिक रूप से कुछ जातियों को अछूत समझा जाता था। समाज में बंजारों का भी निवास था। ये लोग प्रायः संचरणशील थे इसलिए अस्थाई रूप से ही निवास करते थे।

मुगल काल में आइन–ए–अकबरी से पता चलता है कि कृषक खुद व पाही में विभक्त थे। इसके अलावा कृषकों का एक तीसरा वर्ग भी था जिन्हें मुजारियान भी कहते थे। खुदकाश्त बड़े किसान थे जो अपनी भूमि के स्वामी होते थे तथा गावों में इनका सामाजिक–आर्थिक दर्जा बहुत ऊँचा होता था। ये अपने गाँव की सबसे अच्छी जमीन पर खेती करते थे। पाहीकाश्त को अतिरिक्त जमीन पर खेती करने के लिए दूसरे गांवों से बुलाया जाता था। पाहीकाश्त गरीब किसान होते थे। इनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। खुदकाश्त किसानों को स्थानीय बोलचाल की भाषा में चुपरबंद भी कहते थे। चुपरबंद प्रायः गांव के जमींदारों के अधीन रहकर कृषि कार्य करते थे। इन किसानों को गांव के बाहर जाकर खेती करने की अनुमति नहीं थी। पाही संचरणशील किसानों का वर्ग था। पाही कृषक स्वतंत्र रूप से खेती करते थे। चुपरबंद किसान भी कई वर्गो में बंटे हुए थे। इनमें सबसे ऊपरी स्थान पर मुकद्दम होते थे। 18वीं शताब्दी तक आते–आते मुकद्दमों ने मुखिया के रूप में अपना स्थान बना लिया। रूहेलों ने इन्हीं मुकद्दमों की सहायता से भू–राजस्व की वसूली प्राप्त की तथा उन्होंने इन मुकद्दमों का ग्रामीण सामाजिक जीवन में विशेष महत्व को स्वीकार किया। स्थानीय जमींदार इन मुकद्दमों को उनकी सेवा के बदले कुछ रियायतें प्रदान करते थे। यद्यपि इन रियायतों अथवा भूमि पर उनका कोई पैतृक अधिकार नहीं होता था जैसा कि मिस्टर मोन्स ने 1805 में अपने पत्र में लिखा है। मुकद्दमों के संदर्भ में इसी प्रकार का कथन बिजनौर और बरेली सेटलमेन्ट रिपार्ट में भी प्राप्त होता है। प्रायः मुकद्दम का पद और अधिकार भी वंशानुगत हस्तांतरित होता था। मुकद्दमों के बाद कृषकों का दूसरा वर्ग रकमी आसामियों का होता था। रूहेलखण्ड के तराई क्षेत्र में इन्हें भलमानुष कहा जाता था। इन किसानों के भीतर भी जाति–वर्ण अथवा परंपरा के आधार पर विभेद प्राप्त होता है। प्रायः उच्च जाति के किसानों को साधारण किसानों की अपेक्षा कुछ रियायतें प्राप्त होती थीं। इन उच्च जातियों राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ आदि सम्मिलित थे। कृषकों की तीसरी श्रेणी साधारण किसानों की होती थी। इन्हें प्रायः उच्च श्रेणी के किसानों के यहाँ भी अपनी सेवायें देनी पड़ती थी।

रूहेलों द्वारा रूहेलखण्ड पर नियंत्रण स्थापित कर लेने के उपरांत एक सुदृढ़ भू–राजस्व व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया। रूहेलों ने विद्रोही किसानों और जमींदारों को लगान चुकाने के लिए बाध्य किया। उन्होंने बंजर जमीन को उपजाऊ बनाने तथा उसे आबाद करने का भी प्रयास किया। इस तरह रूहेलखण्ड क्षेत्र की आमदनी में बढ़ोत्तरी हुई तथा जमींदारों द्वारा कृषकों और गैर कृषकों से होने वाली गैर कानूनी वसूली पर रोक लागई गई। रूहेलों ने क्षेत्र में राजस्व की वसूली के लिए इजारेदारी या नीलामी प्रक्रिया को अपनाया।

परन्तु इसका भी ध्यान रखा गया कि इजारेदार किसी भी स्थिति में किसानों का उत्पीड़न न कर सके। नीलामी अधिकतर 10 वर्षो के लिए की जाती थी। इजारेदारों को कृषि के विस्तार के लिए भी प्रयास करना पड़ता था। भू–राजस्व के अलावा ग्रामीणों से छोटे–छोटे उपकर भी वसूल किये जाते थे। बाहर से ग्राम में आने जाने वाले अनाज व्यापारियों से चुंगी भी वसूल किया जाता था। विशेष जातियों द्वारा की गई सेवा के बदले उन्हें नेगा दिया जाता था। ये जातियाँ बढ़ई, कहार, धोबी, नाई तथा धानुक आदि थीं।

इस प्रकार 18वीं शताब्दी में रूहेखण्ड में रूहेलों के अंतर्गत आर्थिक गतिविधियों में तीव्रता आई। यहाँ खेती–बाड़ी तथा व्यापार और वाणिज्य का विकास हुआ। प्रशासनिक कुशलता से क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था स्थापित हुई जिसका लाभ वहाँ के ग्रामीण समाज के जनजीवन को मिला। यद्यपि रूहेलों ने कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं किया तथापि पहले से स्थापित शासन व्यवस्था को ही चुस्त–दुरूस्त किया।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. सैय्यद अल्ताफ अली बरेलवीं, हयात–ए–हाफिज रहमत खान, पृष्ठ सं0–41–42
2. चार्ल्स हेमिल्टन, रूहेला अफगान इन द नार्दन प्राविन्सस, पृष्ठ सं0–31–32
3. ई0 डब्ल्यू0 ओलिब, नोट्स ऑन द इण्डीजिनिस केटल ऑफ द यूनाइटेड प्रोविन्सस, पृष्ठ सं0–4,15
4. इरफान हबीब, द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया 1556–1707, पृष्ठ सं0–68–69
5. विलियम फ्रेंकलिन, द हिस्ट्री ऑफ द रेन ऑफ शाहआलम, द प्रेजेण्ट एम्परर ऑफ हिन्दुस्तान, 1797, पृष्ठ सं0–58,59
6. अबुलफजल, आइन–ए–अकबरी, खण्ड 1 (अनु0) एच0 ब्लोचमन, पृष्ठ सं0–62–66
7. जार्च फोस्टर, अ जर्नी फ्राम बंगाल टू इंग्लैण्ड थ्रू द नॉदर्न पार्ट ऑफ इण्डिया, कश्मीर, अफगानिस्तान एण्ड पर्सिया, लंदन, 1798, पृष्ठ सं0–137
8. एच0 आर0 नेबिल, डिस्ट्रिक गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेड प्रोविन्स ऑफ आगरा एण्ड अवध, बरेली खण्ड XIII, पृष्ठ सं0–89
9. एस0 एम0 मोन्स, द रिपोर्ट ऑफ द सेटलमेण्ट ऑफ द बरेली डिस्ट्रिक्ट नार्थ– वेस्टर्न प्रॉविन्सिस, पृष्ठ – 1, 12